

उडिशा की सांगीतिक पृष्ठभूमि

डॉ० तापस पाल

Email: paultapash16@gmail.com

भारत विश्व की प्राचीनतम श्रेष्ठ और सम्पन्न संस्कृति वाला देश है, भारत एक विशाल देश है जिसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण में अलग-अलग भूभागों में अलग-अलग संगीत प्रचलित है। जिस प्रकार भारत के हर एक प्रान्त की भाषा में अन्तर देखने को मिलता है, ठीक उसी प्रकार भारत के विभिन्न प्रान्तों के संगीत, वाद्ययंत्रों, गायन शैलियों और ताल पद्धति में भी अन्तर देखने को मिलता है। जिस प्रकार भारत के उत्तरी भाग में उत्तर भारतीय संगीत, दक्षिणी भाग में दक्षिण भारतीय संगीत, बंगाल में रवीन्द्र संगीत प्रचलित है, ठीक उसी प्रकार उडिशा में ओडिशी संगीत प्रचलित है। ओडिशी संगीत की गायन शैली, राग, नृत्य शैली, ताल व तालवाद्य सभी भारतीय अन्य संगीत पद्धति से भिन्न है।

ओडिशी तालों का आविर्भाव कब और कैसे हुआ, इस विषय को जानने से पहले हमें अवश्य ही उडीसा के सांगीतिक इतिहास के बारे में जान लेना आवश्यक है। उडीसा भारत के पूर्वांचल का एक सांस्कृतिक धनी राज्य है। उडिशा का सांस्कृतिक इतिहास भारत के प्राचीन इतिहास से पूर्णतः सम्बन्ध रखता है। ओडिशी संगीत में हमें वैसे ही तालों की अवधारणा मिलती है जो मार्गी तथा देशी तालों की परम्परा में निहित है। बंगाल की खाड़ी के तट पर बसा यह राज्य जिसे जगन्नाथ जी का राज्य भी कहा जाता है जो भारत का ही एक प्रान्त तथा राज्य है, इसलिये यहाँ का सांगीतिक इतिहास भी भारतीय संगीत के इतिहास से पृथक नहीं है। हम सभी जानते हैं कि भारत की सभ्यता सिन्धु तट की सभ्यता है, जिसका आविष्कार ई.पू. 3000 से 1500 के बीच हुआ था। मोहन-जोदड़ो व हड़प्पा में कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी जो मृदंग वादन करने, सप्तछिद्र युक्त बांसुरी बजाने, वीणावाद्य बजाने तथा नृत्य करने की मुद्रा में है। इन मूर्तियों से ज्ञात होता है कि इससे पूर्व भी (सभ्यता के आरम्भ से पूर्व) संगीत काफी उन्नत अवस्था में थी।

बौद्ध काल, में संगीत का भली भाँति प्रचलन हो गया था एवं संगीत उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुका था। उडिशा के इतिहास में इसी समय में चक्रवर्ती सम्राट 'खारबेल' के शासन काल का उल्लेख मिलता है।

सम्राट 'खारबेल' के शासन-काल के बारे में उडिशा के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि इनका शासन-काल आज से प्रायः 2500 साल पुराना है, अर्थात् ई.पू. 100 से ई.पू. 200 वर्ष के मध्य।

इसी समय में निर्मित भुवनेश्वर स्थित 'उदयगिरि' और 'खण्डगिरि' जिसे रानी गुंफा के नाम से भी लोग जानते हैं, जिसे सम्राट खारबेल ने अपने अनुसार बनवाया था, उस पर अंकित चित्रों में एक मंच के बाईं ओर नृत्य संगीत सभा का एक चित्र है, जिसमें एक नृत्यांगना के साथ बांसुरी, उर्ध्व स्वरमण्डल जैसा वाद्ययन्त्र बजाते हुए चित्रित है, तथा सम्राट 'खारबेल' स्वयं अपनी दोनों रानियों को लेकर संगीत व नृत्यकला का उपभोग करने का दृश्य भी विद्यमान है।¹ इन चित्रों से यह प्रमाणित होता है कि उस समय भारतीय संगीत के साथ उडिशा प्रान्त का संगीत भी ताल से ताल मिलाकर चल रहा था। इस रानी गुंफा के चित्र से तथा सम्राट खारबेल के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि उडिशा का संगीत भी काफी प्राचीन है।

भारतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र', जिसे हम सर्वप्राचीन सांस्कृतिक ग्रन्थ के रूप में मानते हैं, के रचनाकाल को लेकर मतान्तर हैं। कुछ विद्वान इसे ई.पू. 200 से सन् 200 तक मानते हैं और कुछ विद्वान के अनुसार इसका समय काल है - सन् 400। ई.पू. 200 से लेकर 400 तक कभी भी हो, सम्राट 'खारबेल' का 'रानी गुंफा का इतिहास 'नाट्यशास्त्र' से पूर्व का है, जो कि उडिशा की सांगीतिक इतिहास के लिये एक गौरवमय विषय है।

इस उदयगिरि- खण्डगिरि गुंफाओं में एक और गुंफा है जिसे 'बाजाघर' गुंफा के नाम से नामांकित किया गया है। अनुमान किया जाता है कि संगीतकार अपना वाद्ययंत्र इस स्थान पर रखा करते थे। इस सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्राट 'खारबेल' स्वयं संगीत के महान पंडित थे, इसलिये उन्हें "गान्धर्व वेद बुध" जैसी सम्माननीय उपाधि से सम्मानित किया गया था। इस उपाधि का अर्थ है - 'गान्धर्व' अर्थात् संगीत (हम वर्तमान में जिसे संगीत कहते हैं, इसे प्राचीन काल में 'गान्धर्व' के नाम से जाना जाता था) 'वेद' अर्थात् 'विद्या' एवं 'बुध' अर्थात् ज्ञानी, गुणी या विद्वान अर्थात् संगीत विद्या में पंडित।

उडिशा के इतिहासकारों के अनुसार सम्राट 'खारबेल' के शासन काल के बाद उडिशा के संगीत जगत में कुछ विशेष परिवर्तन या उन्नति नहीं हुई। इस समय के बाद उडिशा में मन्दिरों का निर्माण कार्य शुरू हो गया था। यहाँ मन्दिरों का उल्लेख करना इसलिये आवश्यक है कि संगीत का इतिहास मन्दिरों से पूर्णरूप से जुड़ा है। भारतवर्ष के उडिशा राज्य में ही सर्वाधिक मंदिर हैं, यह कहना गलत नहीं होगा। इसीलिये इस राज्य को मंदिरों का राज्य भी कहा जाता है और उडिशा की राजधानी भुवनेश्वर और पुरी को 'मन्दिरों का शहर (Temple City)' कहा जाता है। 'Thomas E Donalson' ने अपने ग्रंथ Hindu Temple art of Orissa Vol. one में उडिशा में मन्दिरों के विषय में विस्तार से लिखा है।¹ साथ ही उन्होंने उडिशा के मन्दिरों की एक सूची भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह पता चलता है कि उडिशा में मन्दिरों के निर्माण का सिलसिला अति प्राचीन है। Donalson के अनुसार सन् 575 ई. में उडिशा में मन्दिर का निर्माण हो गया था। इस समय से लेकर सन् 1400 ई. तक यहाँ अनेकोनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ।

गवेषक तथा इतिहासकारों के अनुसार उस समय उडिशा में सभी मन्दिर प्रायः पत्थर काट कर बनाए जाते थे। पत्थर पर सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ बनाई जाती थी, उनमें से अधिकतर मूर्तियाँ नृत्य तथा वाद्य बजाते हुए प्राप्त होती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय का संगीत, परिपक्व अवस्था में था। इन मन्दिरों की दीवारों पर ये मूर्तियाँ आज भी देखने को मिलती हैं। जैसे मुक्तेश्वर मन्दिर, ब्रह्मेश्वर मन्दिर, लिंगराज मन्दिर, राजा-रानी मन्दिर इत्यादि। इन मन्दिरों की दीवारों पर कुछ मूर्तियाँ मर्दल जैसा कुछ वाद्ययंत्र बजाते हुए भी प्राप्त होती हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि, उस समय भी संगीत में ताल वाद्य का प्रयोग होता था। यदि उस समय ताल वाद्य का प्रचलन और प्रयोग था, तो निश्चित रूप से कोई न कोई ताल भी उस ताल-वाद्य पर बजता रहा होगा। इन तत्वों के आधार पर हम निश्चय पूर्वक यह कह सकते हैं कि उस समय तालों का प्रयोग अवश्य ही होता था। जैसा कि मन्दिरों के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय मन्दिर पूर्ण रूप से स्थापित हो गया था। अतः मन्दिरों में आरती, कीर्तन, भजन भी होते होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। आरती, कीर्तन, भजन के साथ अवनद्ध ताल वाद्यों का प्रयोग होना उतना ही स्वाभाविक है, जितना सूर्य के साथ किरण और चन्द्रमा के साथ चांदनी का होना। अतः निश्चित रूप से उस समय भी ताल विद्यमान था। इस प्रकार मन्दिर काल में अर्थात् सन् 550 से 1400 ई के बीच संगीत के होने और संगीत में ताल के होने का प्रमाण तत्कालीन मन्दिरों से प्राप्त होता है।

सन् 900 से 1000 के बीच ओडिशी संगीत में पद्य साहित्य एवं 'चर्जा साहित्य' प्रारम्भ हुआ। यह कार्य प्रारम्भ करने में जिनका विशेष योगदान है, वह है बौद्ध सिद्धाचार्य। चर्जा साहित्य में गीतों तथा रागों का उल्लेख मिलता है। उडिशा के संगीतकारों तथा विद्वानों का मानना है कि रागों का उल्लेख चर्जा साहित्य में किया जाना भारतीय संगीतिक इतिहास की एक प्रमुख घटना है।³ चर्जा साहित्य में चर्जा गीत 5/6 पदों का हुआ करता था तथा विभिन्न रागों के अन्तर्गत रचित होता था। इस चर्जा साहित्य में रागों का तथा गीतों का तो उल्लेख मिलता है परन्तु तालों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

उडिशा के सांगीतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है - जयदेव कृत 'गीतगोविन्द'। जयदेव द्वारा रचित इस ग्रन्थ का रचनाकाल है - 11वीं से 12वीं शताब्दी। इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम तालों का उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ ओडिशी संगीत का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'गीतगोविन्द' की रचनाएँ उस समय मन्दिरों में गाई जाती थी।⁴ उस समय से लेकर आज तक 'गीतगोविन्द' का प्रयोग ओडिशी संगीत में होता चला आ रहा है। आज भी ओडिशी संगीत के समारोहों में 'गीतगोविन्द' का बहुतायत रूप से प्रयोग होता है। 'गीतगोविन्द' में जयदेव ने प्रबन्ध के कुछ विशेष अंगों का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार है - (१) स्वर (२) विरूढ (३) पद (४) तेनक (५) पाट (६) ताल।

'गीतगोविन्द' में श्री जयदेव ने पाँच तालों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है - (1) रूपक (2) निःसारि (3) यति ताल (4) एकताली (5) अष्टताली। उपेराक्त तालों के विषय में गीत गोविन्द में निम्न उल्लेख प्राप्त होता है -⁵

रूपक :- रूपक को कुछ विद्वान 6 मात्रा का ताल मानते हैं और कुछ लोग इसे 7 मात्रा की ताल मानते हैं अर्थात् 2 + 4 = 6 मात्रा या 3+2+2=7 मात्रा। वर्तमान समय में ओडिशी संगीत में रूपक ताल 6 मात्रा विशिष्ट ताल के रूप में प्रचलित है।

निःसारि :- इस ताल के विषय में लेखक ने उल्लेख तो किया परन्तु विस्तारपूर्वक इसके विषय में कुछ भी नहीं लिखा । इस ताल के विषय में संगीत शास्त्रकारों में मतान्तर है । कुछ इसे 14 मात्रा का ताल मानते हैं, कुछ 13 मात्रा का और कुछ शास्त्रकार का मानना है कि यह 10 मात्रा का ताल है ।

यति ताल :- यह 14 मात्रा विशिष्ट ताल है । इसका छन्द है - 3+4+3+4 = 14 मात्रा ।

एक ताली :- यह 4 मात्रा का ताल है । आज कल ओडिशी संगीत में इस ताल का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है ।

अष्टताली :- यह 8 मात्रा विशिष्ट ताल है ।

‘गीत-गोविन्द’ में कुल 24 अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में राग व ताल के उल्लेख मिलता है । (गीत-गोविन्द में अध्याय को प्रबन्ध कहा गया है) ‘गीत-गोविन्द’ में जिन रागों व तालों का उल्लेख मिलता है, वे क्रम से प्रबन्धानुसार इस प्रकार हैं -⁶

प्रथम प्रबन्ध :- मालव राग, रुपक ताल (प्रलय पयोधिजले)

द्वितीय प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, निःसारी ताल (श्रित कमला कुच मण्डल)

तृतीय प्रबन्ध :- बसंत राग, यति ताल (ललित लवंग लता)

चतुर्थ प्रबन्ध :- रामकरी राग, यति ताल (चंदन चर्चित)

पंचम प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, यति ताल (स-रदधर सुमधुर)

षष्ठ प्रबन्ध :- मालव गौड़ा राग, यति ताल

सप्तम प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, यति ताल

अष्टम प्रबन्ध :- कर्णाट राग, एकताली (निन्दति चंदन...)

नवम प्रबन्ध :- देशाख्य राग, यति ताल

दशम प्रबन्ध :- दश देशी, वराड़ी राग, रुपक ताल (वहति मलय समीरे)

एकादश प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, एकताली (रति सुखसारे)

द्वादश प्रबन्ध :- गोण्डिकिरी राग, रुपक ताल (पश्यति दिशि)

त्रयोदश प्रबन्ध :- मालव राग, यति ताल (कथित समये—पि)

चतुर्दश प्रबन्ध :- बसंत राग, यति ताल (स्वर समरोचित विरचित)

पंचदश प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, एकताली (समुदित मदने रमणी वदने)

षष्ठदश प्रबन्ध :- देशबराड़ी राग, रुपक ताल (अनिलतरल कुब लय नयनेन)

सप्तदश प्रबन्ध :- भैरवी राग, यति ताल (रजनिजनित गुरु जागर)

अष्टदश प्रबन्ध :- गुर्जरी राग, यति ताल (हरि रधि सरति)

उनविंश प्रबन्ध :- देशबराड़ी यति, जति ताल

विंश प्रबन्ध :- बसंतराग, यति ताल (विरचित चाटुवचन)

एकविंश प्रबन्ध :- बराड़ी राग, रुपक ताल

द्वाविंश प्रबन्ध :- बराड़ी राग, यति ताल (राधावदन विलकन)

त्रयोविंश प्रबन्ध :- विभास राग, एकताली (किशलय शयन तले कुरु कामिनी)

चतुर्विंश प्रबन्ध :- रामकरी राग, यति ताल (कुरु जदुनन्दन चन्दन शरिर तरेन)

उड़ीसा के इतिहास, ऐतिहासिक ग्रन्थों, मन्दिरों के आकार, दीवारों पर बने चित्रों, शिला खदित मूर्तियों के अध्ययन से उस समय की सांगीतिक स्थिति का आभास मिलता है। इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि ई.पू. प्रथम से लेकर सन् १२०० के मध्य विभिन्न उतार-चढ़ावों और झंझावातों के बाद भी संगीत विभिन्न सोपानों को पार कर उन्नत अवस्था में पहुँच चुका था, परन्तु वर्तमान में जो ओडिसी शास्त्रीय नृत्य और शास्त्रीय मर्दल - वादन प्रचलित है, वह विशेष प्राचीन नहीं है। विशेषकर यदि हम वर्तमान ताल - पद्धति पर विचार करें तो इतिहास से तथा वर्तमान ओडिसी संगीत के विद्वानों से जानकारी मिलती है कि, यह ताल पद्धति उड़ीसा के शास्त्रीय - ओडिसी - नृत्य के साथ ही आया है। इस नृत्य के अतीत पर यदि हम दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि सन् ११०० से सन् १२०० ई. के मध्य उड़ीसा के मन्दिरों में देवताओं के समक्ष नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। यह नृत्य देवताओं की सेवा हेतु किया जाता था। यही विश्वविख्यात श्री जगन्नाथ मन्दिर में भी प्रचलित हुआ। भारत के पूर्वांचल राज्य उड़ीसा के पुरी धाम में स्थित श्री जगन्नाथ मन्दिर जिसमें भगवान श्री जगन्नाथ जी विराजमान हैं, का स्थापना काल इतिहासकारों ने १११४ से १४३५ ही माना है। H(१) इतिहासकारों के अनुसार जगन्नाथ मन्दिर में ३६ प्रकार की सेवा प्रथा का प्रचलन है, परन्तु वास्तव में सेवा - प्रथा की संख्या इससे भी अधिक है। उसका उल्लेख कई ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अंग्रेजों के भारत में आगमन के पश्चात इन सेवा - कारों की संख्याओं में बढ़ोत्तरी हुई है। तत्कालीन पुरी के कलेक्टर (Groom Sahed) के अनुसार १८०७ सदी में सेवा - कारों की संख्या २५० तक पहुँच गई थी।

इन सेवाओं में कुछ संगीत - सेवाएँ भी उस समय मन्दिर में प्रयोग में थी। संगीत से सम्बन्धित जो सेवाएँ उस समय मन्दिर में प्रयोग में थीं वे इस प्रकार हैं - (१) (क) वीणाकार (ख) गायनी (ग) सम्प्रदानिजोग (घ) मादली (ङ) संखुआ (च) घन्टुआ (छ) गीत-गोविन्द सेवक।

- (१) वीणाकार :- भगवान के पोहड़ के समय अर्थात् शयन के समय वीणा बजाना इन सेवाकारों का काम था।
- (२) गायनी :- पोहड़ के समय तथा अन्य सांगीतिक कार्यक्रमों के समय गायन प्रस्तुत करना इन सेवाकारों का कर्म था। गायनी सेवा दो भाग में विभाजित है। (१) भीतर गायनी (२) बाहर गायनी। जो गायक मंदिर के भीतर गायन किया करते थे उसे भीतर गायनी तथा जो मंदिर के बाहर गायन प्रस्तुत किया करते थे उसे बाहर गायनी कहा जाता था। ये दोनों ही गायन सेवा मंदिर के विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम में ही गाया करते थे।
- (३) सम्प्रदा निजोग :- यह एक नृत्य सेवा है। ये नर्तकी गण मंदिर के पटुआ (शोभायात्रा) के समय भगवान के लिए नृत्य प्रस्तुत किया करती थी।
- (४) मादली :- यह पटुआ (शोभायात्रा) के समय नृत्य के साथ मादल (मर्दल) बजाने का काम करते थे।
- (५) संखुआ :- संख जो कि हमारे भारतीय परम्परा संस्कृति का एक अति प्राचीन वाद्य है। वैजेत्री के साथ यानि वादकों के साथ यह सेवक संख बजाते थे।
- (६) घन्टुआ :- प्रत्येक दिन भगवान के सेवा में घन्टा बजाना इनका कार्य था एवं शोभायात्रा में घन्टा बजाने की परम्परा जगन्नाथ मन्दिर के संस्कृति में अति प्राचीन व अनिवार्य है। जो सेवाकार घन्टा बजाने का कार्य करते थे उन्हें घन्टुआ कहा जाता था।
- (७) गीत गोविन्द सेवक :- गीत गोविन्द तथा मंदिर परम्परा एक दुसरे के साथ शुरू के दिनों से ही जुड़ा हुआ है। जो सेवक गीत गोविन्द गा कर भगवान की सेवा करते थे उन्हें गीत गोविन्द सेवक कहा जाता था।

परन्तु हम यह कह सकते हैं कि, यह सेवाएँ आज की तिथि में प्रायः समाप्त हो चुकी हैं। लेकिन उड़ीसा का सांगीतिक, सांस्कृतिक इतिहास जानने के लिए इस मंदिर की संस्कृति को जानना आवश्यक है, ऊपर उल्लिखित यह सारी सेवाएँ प्रभु के सामने संगीत की सेवाएँ हैं।

जगन्नाथ मंदिर की एक और मुख्य सेवाओं में से एक अति विशिष्ट सेवा है नृत्य सेवा। कथन है कि महाप्रभु के (पोहड़) शयन के समय कुछ विशेष महिलाएँ नृत्य प्रस्तुत कर प्रभु का मनोरंजन किया करती थीं। इस सेवा को या इन नृत्यांगनाओं को देवदासी / माहरी कहा जाता था। ये महिलाएँ अपने आपको भगवान की शरण में समर्पित कर देती थी। अपने आपको भगवान की दासी बना देती थी। इसलिए इन्हें देवदासी कहा जाता था। स्वयं भगवान के साथ इनका विवाह होता था और आजीवन भगवान की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करती थी। इन सेवाकारों में भी दो सम्प्रदाय हैं। एक मंदिर के भीतर नाचती थी और एक मंदिर के बाहर नाचती थी। H(१) उल्लिखित है कि चोरगंग देव ने एकादश सदी में पुरी जगन्नाथ मंदिर में देवदासी नृत्य प्रथा का प्रारम्भ करवाया था। पंचदश सदी में गजपति वंश के राज्यकाल में इन देवदासियों को अर्थ प्रदान करने की व्यवस्था की गई थी। इस समय काल में मंदिर में गीत गोविन्द गाया जाता था, नृत्य प्रथा प्रचलित हो गई थी एवं मर्दल का प्रयोग होने का उल्लेख भी मंदिर के इतिहास से पता चलता है। चूंकि गीत गोविन्द के साथ पांच तालों का (रूपक, निःसारि, एकतली, जती, अष्टताली) प्रयोग होने का इतिहास गीत गोविन्द में है। इससे हम यह कह सकते हैं कि उस समय से यानी सन् १२०० से ही मर्दल में यह पांच तालें बजना शुरू हो गई थी। परन्तु इसके बारे में विस्तार रूप से नहीं पता चलता है कि इसके अतिरिक्त भी कुछ तालें थी या नहीं और कुछ बजाया जाता था या नहीं। ये ताले संगत के रूप से प्रयोग की जाती थी।

षष्ठदश शताब्दी में उड़ीसा फिर से पराधीन हुआ एवं देवदासी व माहरी प्रथा लुप्त होने लगी। इसी समय या कुछ वर्षों के बाद सप्तदश शताब्दी के शेष काल में उड़ीसा में एक और नृत्य शैली सामने आई जिसे 'गुटिपुआ' नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य शैली में छोटे उम्र के लड़के-लड़कियों के भेष में स्वयं गायन करते हुए नृत्य प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य का विशेष आकर्षण है बाल नृत्य कलाकार द्वारा प्रदर्शित दैहिक कौशल। इस शैली के आविर्भाव का कारण इतिहास के अनुसार यहाँ के वैष्णव धर्म है। क्योंकि ये वैष्णव नारी के नाम से ही अपने को कोसों दूर रखते थे, परन्तु नृत्य कला को उपयुक्त सम्मान देते थे, फल स्वरूप इस नृत्य की सृष्टि हुई।

कालक्रम में इस गुटिपुआ के गुरुओं ने तथा उस समय के और संगीत के गुरुओं ने इस विषय पर गम्भीरता से सोचा एवं अनेक गवेषणाओं के बाद एवं संशोधन के बाद इस आज के ओड़िसी नृत्य का आविष्कार किया जो आज दुनिया भर के प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों में से एक है। इस नृत्य ने चाहे जितना उतार चढाव का सामना क्यों न किया हो मर्दल हमेशा इसके साथ रहा है। यहाँ सभी के मन में एक प्रश्न यह उठता है कि इस नृत्य का इतिहास क्या है ?

हमारे संगीत तथा संस्कृति का मुख्य प्राचीनतम प्रामाणिक ग्रन्थ भरत मुनी के "नाट्य शास्त्र" में इस नृत्य के बारे में उल्लेख देखने को मिलता है। (१) भरत ने भारत के विभिन्न नृत्य शैलियों का उल्लेख करते हुए "उड़ मागधी" का भी उल्लेख किया है और भरत के अनुसार यह नृत्य शैली उड़ कलिंग, वंग, नेपाल तथा भारत के और कुछ पूर्वी क्षेत्र में प्रचलित थी। कालक्रम से यह नृत्य शैली माहरी/ देवदासी गुटिपुआ के रूप में अपनी परम्परा को बचाते हुए आगे बढ़ती रही। आज से प्रायः १५० वर्ष पूर्व इसका पुनरुद्धार करने का प्रयास शुरू किया गया तथा अनेक कठोर प्रयासों के बाद एवं लम्बे समय के बाद यानी देश स्वाधीन होने के बाद इस परम्परा का उद्धार होना शुरू हुआ एवं आज जो ओड़िसी नृत्य हम देखते हैं वह उसी का परिष्कृत रूप है। ये सभी नृत्य चाहे वो देवदासी / माहरी हो या गुटिपुआ या फिर ओड़िसी, गीत गोविन्द की रचना के आधार पर ही किये जाते थे।

संदर्भ

1. ओड़िसी संगीतर परम्परा ओ प्रयोग डा. रामहरी दास 'प्रथम अध्याय' पृ. 7
2. Hindu Temple Art of Orissa Vol. 1 Thomas E Donalson Pg. 17 - 20 (State Library Bhuwaneswar)
3. ओड़िसी संगीतर परम्परा ओ प्रयोग — डा. राम हरि दास, प्रथम अध्याय पृष्ठ 9
4. ओड़िसी संगीतर परम्परा ओ प्रयोग — डा. राम हरि दास, प्रथम अध्याय पृष्ठ 13
5. ओड़िसी संगीतर परम्परा ओ प्रयोग — डा. राम हरि दास, प्रथम अध्याय पृष्ठ 95
6. ओड़िसी संगीतर परम्परा ओ प्रयोग — डा. राम हरि दास, प्रथम अध्याय पृष्ठ 82